Issue : **September 2014**

Van Sangyan

Tropical Forest Research Institute
(Indian Council of Forestry Research and Education)
PO RFRC, Mandla Road, Jabalpur – 482021
Visit us at: **http://tfri.icfre.gov.in (or) http://tfri.icfre.org**
Write to us at: **vansangyan_tfri@icfre.org**

From the Editor's desk

Geographical information systems (GIS) is a large domain that provides a variety of capabilities designed to capture, store, manipulate, analyze, manage and present all types of geographical data, and utilizes geospatial analysis in a variety of contexts, operations and applications. This issue of Van Sangyan contains an article on the application of Geospatial technology in Operational forestry.

There are also sections on the preparation of Vermicompost and Panchagavya, along with other useful articles.

I hope that you would find all information in this issue relevant and valuable.

Readers of *Van Sangyan* are welcome to write to us about their views and queries on various issues in the field of forestry.

Looking forward to meet you all through forthcoming issues.

Dr. N. Roychoudhary

Chief Editor

Contents   Page

Application of Geospatial technology in operational forestry
– Dheeraj Gupta 1

खरपतवार–गाजरघास (पार्थीनियम हिस्टोफोरस): नियंत्रण, निदान एवं लाभदायक उपयोग
– डॉ. राजेश कुमार मिश्रा, डॉ. नसीर मोहम्मद एवं ट्रीसा हेमल्टन 3

जैव उर्वरक – वर्मीकम्पोस्ट
– शालिनी भोवते 8

सागवान वन क्षेत्रात नैसर्गीक प्रादुर्भावामुळे वाळंत असलेल्या तरूण झाडांवर उपचार करून पुनर्जीवीत करणे 11
– डॉ. पी. बी. मेश्राम

व्हाइट ग्रब्स (सफेद इल्लियॉ) वन रोपणी का एक महत्वपूर्ण कीट
– डॉ. संजय पौनीकर, मंसूर अहमद एंव डॉ. नितिन कुलकर्णी 14

पंचगव्य – एक आदर्श जैविक पौधआहार
– अविरल असैया एवं राजेन्द्र कुमार बागड़े 17

Ruddy Marsh Skimmer : A Beneficial Insect
– Kritish De 21

अगस्त (*Sesbania grandiflora* Linn.): एक बहु–उपयोगी वृक्ष
– डॉ. विशाखा कुंभारे 24

Know your Biodiversity (*Celastrus paniculatus* & *Bubulcus ibis*)
– Swaran Lata 26

Application of Geospatial Technology in Operational Forestry

Dheeraj Gupta

Silviculture & JFM Division, Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

Geospatial technology refers to equipment used in visualization, measurement and analysis of earth's features, typically involving such systems as GPS (global positioning systems), GIS (geographical information systems), and RS (remote sensing). Many government, state, and private forestry organizations and agencies today utilize geospatial technology such as GIS and satellite imagery for various applications supporting analysis, assessment and management of forests. Its use is well-known and widespread, but its influence is pervasive everywhere, even in areas with a lower public profile, such as land use, flood plain mapping and environmental protection.

Forestry

Many applications of forestry and natural resources require accurate land cover and change analysis. Changing conditions due to urban sprawl, as well as increasing forest fragmentation, make land cover and change detection analysis an extremely important consideration for management, planning and inventory mapping. This includes ecosystem and species diversity, forest productivity, reforestation, forest health, conservation of soil, water resources and nutrient cycling.

Wildfires in Bastrop, Texas, USA using WorldView-2 (0.5m) Satellite Sensor

Fire and Emergency Mapping

Satellite images and GIS maps support fire and emergency personnel for responding to emergency situations, hazardous fuels reduction, community assistance, firefighting, rehabilitation and restoration. In order to model a forest fire, the techniques for obtaining, analyzing and displaying spatial information in a timely and cost-effective manner are needed which has proven not only to be possible, but incredibly efficient and effective.

Deforestation

Deforestation has been attributed to socio-demographic factors, such as population growth and the political economy of class structure and specific exploitation activities like commercial logging, forest farming, fuel wood gathering, agriculture and pasture clearance for cattle production. Satellite image processing in conjunction with GIS data are effective means for quantifying deforestation and for assessment and monitoring of our forests. Any freely available satellite images (Landsat (MSS, TM, ETM+) or LISS-III) can be downloaded. Having been images corrections, they are needed to be open in standard false colour composite (FCC) in viewer. In standard FCC the NIR band is viewed in Red; Red band in Green; and Green band in Blue. The entire process is depicted below. The vegetation appears in red and settlement in cyan colour in standard FCC.

Flow chart for deforestation identification

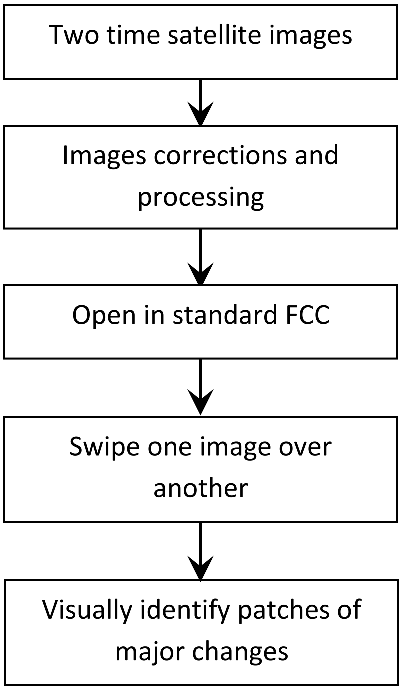

Images showing conversion of forest patches (in red colour) into settlement (in cyan colour)

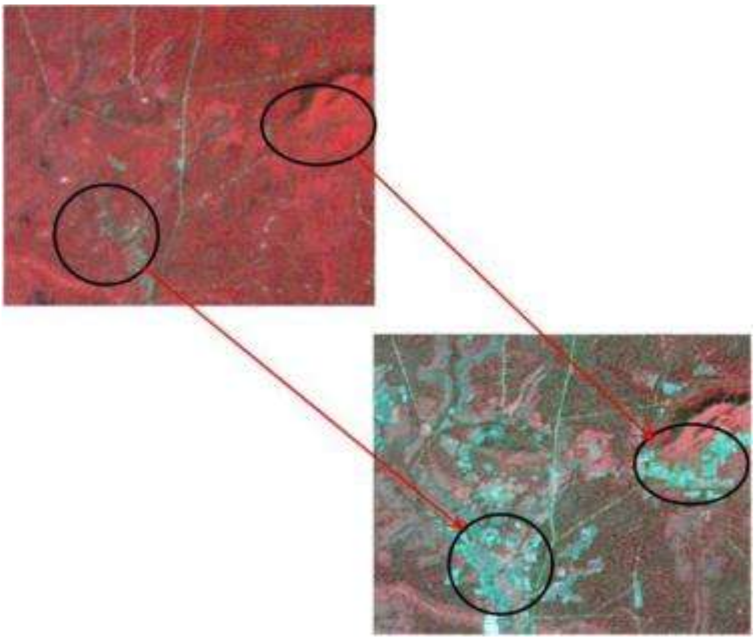

खरपतवार-गाजरघास (पार्थीनियम हिस्टोफोरस): नियंत्रण, निदान एवं लाभदायक उपयोग

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा, डॉ. नसीर मोहम्मद एवं ट्रीसा हेमल्टन

संगणक एवं सूचना प्रौद्योगिकी अनुभाग/आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन प्रभाग

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

गाजर घास प्राय: प्रत्येक स्थान पर उगने वाला एक ऐसा खरपतवार है जिसकी पत्तियाँ गाजर के पौधे जैसी दिखती है, इसी कारण इसे गाजरघास के नाम से पुकारा जाता है। अंग्रेजी भाषा में इसको विभिन्न नामों जैसे कांग्रेस घास (Congress Ghas), फिवरघास (Fever Few), स्टार वीड (Star Weed), कैरट वीड (Carrot Weed), व्हाइट कैप (White Cap), व्हाइट टॉप (White Top) इत्यादि नाम से पुकारा जाता है । इसी प्रकार भारत के विभिन्न राज्यों में स्थानीय भाषा में इसे चटक चांदनी , गजरी, ओसादी, झाड़ू-झाडी, गांधी-बूटी, कड़वी घास, निर्पादिया घास, सफ़ेद टोपी, फंद्री फुली, ब्योरी , बामा इत्यादि नामों से पुकारा जाता है। गाजरघास खेतों की मेढ़ से लेकर हर जगह दिखाई देती है । इसका वैज्ञानिक नाम पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस है। वैसे तो यह पर्यावरण व जैव विविधता के लिए भी बड़ा खतरा है । लेकिन कम्पोस्ट तैयार होने के बाद इससे विषाक्त रसायन पार्थेनिन का पूर्णत: विघटन हो जाता है । इस घास के परागकण से एग्जिमा, अस्थमा, त्वचा की बीमारी हो सकती है। इसके एक पौधे से पच्चीस हजार बीज पैदा होते हैं जो कृषि उत्पादन को प्रभावित करता है।

मनुष्यों व पशुओं में एलर्जी पैदा करनेवाला गाजरघास खेतों के लिए वरदान साबित हो सकता है । इससे कम लागत में जैविक खाद बनाकर किसान भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ा सकते हैं। साठ के दशक में मैक्सिको से आयात किये गये गेंहू के बीज के साथ इस खरपतवार ने आज भारत में 35 मिलियन हेक्टेयर के क्षेत्रफल में अपना कब्जा कर लिया है। देश में प्रतिवर्ष लगभग 1 लाख करोड़ रुपये के खाद्यान्य का नुकसान खरपतवारों, कीड़ो व बीमारियों से होता है । जिसमें सबसे अधिक नुकसान गाजरघास से होता है । एक पौधा लगभग 25000 तक बीज उत्पन्न करता है और यह प्रकाश एवं तापक्रम के प्रति उदासीन होने के कारण पूरे वर्ष उगता एवं फलता फूलता रहता है।

गाजर घास के पौधे

गाजर घास (पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस) की समस्या जन-जन की समस्या बनती जा रही है। भारत में गाजर घास लगभग सभी क्षेत्रों में फैली है और जन-स्वास्थ्य के लिये खतरा बनी हुई है। यह विडंबना ही है कि आज भी भारत की आबादी का एक बड़ा हिस्सा गाजरघास के विषय में नहीं जानता है । आज आवश्यकता इस बात की है कि व्यापक जन-जागरण अभियान चलाकर न केवल व्यक्तिगत स्तर पर गाजर घास का उन्मूलन किया जाए बल्कि सरकार पर भी दबाव बनाया जाये। गाजरघास एक साधारण सा दिखने वाला खरपतवार है जो कि पहले बेकार जमीन व मेड़ों तक ही सीमित था पर अब यह खेतों में प्रवेश कर फसलों से प्रतियोगिता कर रहा है। गाजर घास एस्टेरेसी परिवार का सदस्य है। देश-विदेश के विभिन्न क्षेत्रों में इसके अलग-अलग स्थानीय नाम हैं । इन नामों के पीछे गाजर घास के पौधे की विशेषता छिपी हुई है । गाजरके समान

पत्ती होने के कारण इसे गाजर घास कहते हैं। इसके फूल सफेद रंग के होते हैं इसलिए इसे चटक चांदनी या व्हाइट टाप भी कहा जाता है। जबलपुर के आस-पास के लोग इसकी सर्वत्र उपलब्धता के आधार पर इसे रामफूल कहते हैं। चूंकि यह खरपतवार सामान्यत: समूहों में उगता है इसीलिए इसे कांग्रेस बीड कहा जाता है। पार्थेनियम की 15 जातियाँ विश्व में पाई जाती हैं। इनमें से पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस ही अधिक नुकसानदायक है। बहुत अधिक बीजोत्पादन क्षमता होने के कारण ही इसे पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस का नाम मिला। गाजरघास के पौधे वार्षिक होते हैं व इनकी ऊंचाई सामान्यतया 2 मीटर तक होती है। गाजर घास की पत्तियों व तनों पर छोटे-छोटे रोम पाये जाते हैं जिन्हें ट्रायकोम्स कहा जाता है।

गाजर घास की पत्तियाँ

गाजरघास संभवत: विश्व का एकमात्र ऐसा खरपतवार है जो कि मनुष्यों, पशुओं, फसलों, वनों और वन्यप्राणियों सभी के लिये नुकसानदायक है। गाजर घास के फूलों से उत्सर्जित होनेवाले पराग-कण मनुष्य के श्वास तंत्र में प्रवेश करके अस्थायी दमा व एलर्जी उत्पन्न करते हैं। गाजर घास के एक फूल से असंख्य परागकण उत्सर्जित होते हैं। एक परागकण किसी मनुष्य को अस्वस्थ करने के लिये पर्याप्त है। ये परागकण हमारे आस-पास हवा में फैले रहते हैं व साधारण आँखों से दिखायी नहीं पड़ते हैं। देश के विभिन्न महानगरों व नगरों में किये गये सर्वेक्षणों से पता चला है कि वहाँ के वातावरण में गाजर घास के परागकण अन्य हानिकारक परागकणों की तुलना में बहुत अधिक हैं। पश्चिम बंगाल के मोहनपुर क्षेत्र में काली पूजा के समय गाजर घास के फूल आते हैं व परागकणों का उत्सर्जन होता है। इस समय यहाँ का प्रशासन लोगों की मदद के लिये दसों अस्थायी अस्पतालों की व्यवस्था करवाता है। फिर भी प्रभावित लोगों की संख्या में कमी नहीं आती है। गाजरघास के परागकण मनुष्यों के अलावा पशुओं व फसलों को भी नुकसान पहूँचाते हैं। गाजर घास के निरंतर

गाजर घास के फूल

संपर्क में आने वाले मनुष्यों को त्वचा की एलर्जी का खतरा रहता है। अनुसंधानों से पता चला है कि गाजर घास के संपर्क में आने से एक विशेष प्रकार का एक्जीमा हो जाता है। गाजर घास के पौधे कुछ घातक एलिलो-रसायनों का स्त्राव करते हैं। ये एलिलो-रसायन आस-पास किसी अन्य पौधों को उगने नहीं देते हैं। भारतीय वन अपनी जैव-विविधता के कारण विश्व के मानचित्र में विशेष स्थान रखते हैं। भारतीय वनों में आज भी ऐसी सैकड़ों वनौषधियाँ उपलब्ध हैं जिनके दिव्य औषधिय गुणों का सही आकलन अभी तक नहीं हुआ है। भारतीय वनों में गाजर घास के अनियंत्रित फैलाव से बेशकीमती जड़ी-बूटियाँ नष्ट होती जा रही हैं। गाजर घास के दुष्प्रभाव से वन्य प्राणी भी अछूते नहीं रह गये हैं। आस्ट्रेलिया में प्रति वर्ष 165 अरब रूपयों का खाद्य/मांस गाजर घास के कारण अप्रत्यक्ष रूप से बर्बाद होता है। भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनुसंधानों से पता चला है कि गाजर घास के प्रकोप से फसलों की उपज में 40 प्रतिशत तक कमी हो जाती है। गाजर घास के परागकण मक्के के पर-परागण में बाधा डालते हैं व इसकी उपज को 50 प्रतिशत तक कम कर देते हैं। आस्ट्रेलिया में गाजर घास एक विशेष प्रकार के

सूत्राकृमि को आश्रय देती है । यह सूत्राकृमि सूर्यमुखी के लिये नुकसानदायक है ।

गाजर घास का उत्पत्ति स्थान भारत नहीं है । गाजर घास का उत्पत्ति स्थान दक्षिण मध्य अमेरिका है । सबसे पहले भारत में इसे पूना में देखा गया । आज गाजर घास का उत्पत्ति स्थान अमेरिका, गाजर घास की समस्या से उतना अधिक प्रभावित नहीं है, जितना विश्व के अन्य क्षेत्र । यदि गाजर घास से प्रभावित देशों को मानचित्र में दर्शाया जाये तो सबसे ज्यादा प्रभावित देश भारत ही दिखेगा । गाजर घास से प्रभावित देशों में अफ्रीका गणतंत्र, मेडागास्कर, केन्या, मोजाम्बिक, मारिशस, इजरायल, भारत, बांग्लादेश, नेपाल, चीन, वियतनाम, ताइवान, आस्ट्रेलिया आदि प्रमुख हैं । गाजरघास का पौधा कई विशिष्ट गुणों से युक्त होता है । इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण इसका फैलाव निर्बाध गति से हो रहा है । गाजर घास के एक पौधे से लगलग 25,000 बीज बनते हैं । इन बीजों में सुसुप्तावस्था नहीं पाई जाती है अर्थात ये सभी बीज तुरंत अंकुरण की क्षमता रखते हैं । गाजर घास के बीज हवा व जल के माध्यम से फैलते हैं । एक वर्ष में गाजर घास की तीन से चार पीढ़ियाँ होती हैं । गाजर घास सभी प्रकार की मिट्टियों में अच्छी वृद्धि करता है । यह विपरीत वातावरणीय परिस्थितियों, अधिक अम्लता या क्षारीयता वाली भूमि आदि में उग सकता है । इसके अलावा गाजर घास के पौधे पार्थेनिन, काउमेरिक एसिड, कैफिक एसिड आदि घातक एलिलो रसायनों का स्त्रवण करते हैं जो कि अपने आस-पास किसी अन्य पौधे को उगने नहीं देते हैं व गाजर घास से कोई भी पौधा या फसल प्रतियोगिता नहीं कर पाती है । इन्हीं कारणों से गाजर घास का फैलाव अन्य पौधों की तुलना में तेजी से हो रहा है । पार्थेनियम के बीज बहुत ही छोटे होते हैं, इस कारण से ये हवा के साथ भी उड़ कर कहीं भी पहुंच जाते हैं । अगर इसके पौधे को जला दें, तो भी इसके कुछेक बीज नष्ट नहीं होते और किसी भी जमीन पर अंकुरित होकर फिर से कब्जा जमा सकते हैं ।

गाजर घास के बीज

गाजरघास को परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग विधियों से नियंत्रित किया जा सकता है । गाजर घास को हाथ से उखाड़कर नष्ट किया जा सकता है । यह कार्य फूल आने से पहले करना चाहिये ताकि गाजर घास का आगे फैलाव न हो । इस उपाय से गाजर घास को प्रभावी रूप से नियंत्रण के लिये विशेष सावधानी की आवश्यकता है । हाथों में दस्ताने पहनना व मुँह व कान को अच्छी तरह से कपड़े से बांधना आवश्यक है । बच्चों को तो हाथ से गाजर घास नहीं उखाड़ने देना चाहिये । नमक के 20 प्रतिशत घोल से भी गाजर घास को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है । पाँच गिलास पानी में एक गिलास साधारण नमक घोलकर पौधों पर छिड़काव कर सकते हैं । घरों के आस-पास सीमित स्थानों पर गाजर घास को इस तरह नियंत्रित किया जा सकता है पर बहुत बड़े क्षेत्र में इसके प्रयोग से भूमि की लवणता बढ़ सकती है । साथ ही बड़े क्षेत्र के लिये यह विधि खर्चीली भी है । भारतीय वैज्ञानिकों ने कई ऐसे पौधे सुझायें हैं जो कि तेजी से बढ़ते हैं व उपयोगी हैं तथा गाजर घास की वृद्धि को कम करने में सहायक हैं । इन पौधों में गेंदा, चरोटा, क्रोटन आदि प्रमुख हैं । गेंदे के पौधे का निचोभी गाजर घास की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है । कैसिया सेरेसिया नामक पौधे पौधे गाजर घास से प्रतियोगिता करके उसे नष्ट कर देते हैं । कुछ मित्र कीट व रोग कारक भी गाजर घास के विरूद्ध उपयोगी पाये गये हैं। कीटों में जाइगोग्रामा

बाइकलरेटा नामक कीट केवल गाजर घास को ही नष्ट करता है व भारतीय परिस्थितियों के लिये उपयुक्त पाया गया है । गाजर घास को उपलब्ध कृषि रसायनों की सहायता से भी नियंत्रित किया जा सकता है। इन रसायनों में एट्राजीन, डाइकाम्बा, एट्राजीन+2, 4 डी, मेटसल्फ्यूरॉन, ग्लाइफोसेट आदि प्रमुख हैं।

सन् 1982 में भृग जाति के कीट जाइगोग्रामा बाइक्लोराटा को भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने बैंगलोर में आयात किया था । इस कीट ने बैगलोर और आसपास के क्षेत्रों में गाजरघास के प्रकोप को कम करने में अपार सफलता और ख्याति प्राप्त की है । यह कीट अपने जीवनकाल में लगभग 1500-2000 तक अण्डे देता है । जिससे 4 से 6 दिन में बच्चे (ग्रब) निकल आते है । ग्रब (जातक) पत्तियों को बुरी तरह से खाते हैं। यदि कीट का आक्रमण वनस्पतिक अवस्था में हो जाता है तो पौधों मे फूलों की संख्या बहुत कम रहती है। इस कीट का अपना जीवन चक्र करीब 25 से 30 दिन तक का होता है जो कि जून से अक्टूबर के प्रथम पखवाड़े तक यह बीटल अधिक सक्रिय रहती है । जाइगोग्रामा कम और बहुत अधिक तापमान होने पर सक्रिय नही होता है। इस कीट के एक स्थान पर जहाँ पर अधिक गाजर घास हो कम से कम 500 से 1000 वयस्क बीटल छोड़ने चाहिए जिससे गाजर घास कम हो जाती है। नमक के 10 प्रतिशत घोल का मेड़ों पर छिड़काव करके इस खरपतवार को नष्ट कर सकते हैं। घास कुल की वनस्पतियों को बचाते हुए केवल गाजरघास को नष्ट करने के लिये मेट्रिब्युजिन 0.5 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।

जाइगोग्रामा बाइक्लोराटा

गाजर घास से कम्पोस्ट तैयार करने के लिए वैसे खेत में तीन फुट का गढ्डा बनाकर समतल करना है जहां जल का जमाव नहीं होता हो। फिर गढ्डे में गाजर घास को डालने के बाद सौ किलोग्राम गोबर, पांच से दस किलो यूरिया व एक ड्रम पानी डालना है। इसके अपघटन के लिए ट्राइकोडर्माविरिड पाउडर डालना चाहिए । उसके बाद गढ्डे को गोबर, मिट्टी, भूसा आदि के मिश्रण के लेप से बंद कर दिया जाए। पांच-छह माह में गढ्डा खोलने के बाद कम्पोस्ट निकालकर उसे धूप में सुखाकर थोड़ी देर ट्रैक्टर से रौंदा जाता है ताकि मोटे रेशेयुक्त तने बारीक हो जाएं। इस कंपोस्ट को 2-2 सेमी छिद्रों वाली जाली से छानने के बाद इसे जैविक खाद के रुप में प्रयोग किया जा सकता है। इसके उपयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ने के साथ ही उत्पादकता में वृद्धि होती है । इससे तैयार कम्पोस्ट में गोबर से दोगुनी मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त होता है। इसमें 1.05 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.84 फास्फोरस, 0.90 कैल्शियम, 0.55 मैग्नीशियम रहता है। इसका प्रयोग खेत की तैयारी व सब्जियों में पौधारोपण या बीज बोने के दौरान किया जाता है।

गाजरघास को विदेशों से भारत लाया गया है। यह कटु सत्य है कि गाजर घास को नियंत्रित करने में सक्षम कृषि रसायन भी विदेशों की ही देन हैं। गाजर घास का रासायनिक नियंत्रण पर्यावरण के दृष्टिकोण से बिल्कुल सही नहीं है। उपलब्ध रसायन न केवल मिट्टी बल्कि मिट्टी में उपस्थित लाभकारी सूक्ष्मजीवों के लिये भी नुकसानदायक हैं। इसके अलावा ये रसायन भूमिगत जल को भी दूषित कर देते हैं। यदि यह कहा जाये कि गाजरघास को रासायनिक विधि से नियंत्रित करना एक समस्या को हटाकर दूसरी भयानक समस्या को आमंत्रण देना है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। खरपरवार वैज्ञानिको की पहल पर प्रतिवर्ष 6 से 12 सितम्बर को गाजर घास जागरुकता सप्ताह मनाया जाता है। इसे हाल ही के वर्षो से आरम्भ किया गया है । जिस गति से गाजर घास का फैलाव हो रहा है उसे देखकर यही लगता है कि एक दशक तक वृहत पैमाने पर अभियान की जरुरत है।

गाजर घास के विरुद्ध अभियान मे जुटी संस्थाए सोपाम और आई. पी. आर. एन. जी. द्वारा अभी तक दस हजार से अधिक किसानो को पोस्टकार्ड के माध्यम से जानकारी दी जा चुकी है। आई. पी. आर. एन. जी. गाजर घास से जुडे किसानों और वैज्ञानिकों का आन-लाइन ग्रुप है। इसकी अपनी वेबसाइट है जो गाजर घास पर विस्तार से जानकारी देने वाली दुनिया की एकमात्र वेबसाइट है। इसे भी निज व्यय से संचालित किया जाता है। पिछले एक दशक से भी अधिक समय से गाजर घास जागरुकता अभियान बिना किसी आर्थिक और तकनीकी सहायता से चल रहा है।

किसानों को चाहिए कि वो खेतों व मेढ़ के चारों ओर, घरों के आसपास उगने पर गाजर घास को नष्ट कर दें, ताकि खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि हो सके। इसके उन्मूलन का सबसे सटीक तरीका है कि लोगों को इसके बारे में बताया जाये और फूल आने से पहले ही इसे नष्ट कर दियाजाए, वरना रोग फैलाने के साथ ही यह जमीन को भी बंजर बनाती रहेगी।

जैव उर्वरक – वर्मीकम्पोस्ट

शालिनी भोवते

वानिकी अनुसंधान एवं मानव संसाधन विकास केन्द्र, छिन्दवाड़ा

आज रासायनिक खाद और किटनाशको के हानिकारक प्रभावों को महसूस किया जाने लगा है दिन – प्रतिदिन खेती की उर्वरा शक्ति घट रही है । साथ ही पर्यावरण प्रदूषण समस्या भी बढ़ रही है । इन सभी कारणों की वजह से जैविक खाद 'वर्मीकम्पोस्ट' की आवश्यकता महसूस हुई है ।

वर्मिकम्पोस्टिंग एक सफल तकनीक है , जिसमें केचुओ की मद दसे जैविक खाद तयार किया जाता है । केचुआ खाद तयार करने हेतु विशेष जाती के केचुओं का (इसेनिया फोइटीडा) इस्तेमाल किया जाता है । यह लाल भूरे रंग के होते है एवं इनका शरीर लंबा और खंडयुक्त होता है । केचुएं नमीवाले स्थान पर रहते है । सडी गली पत्तिया, मरे हुए कीट और आंशिक रूप से सड़े कार्बनिक व्यर्थ पदार्थ इनका भोजन है । जो अनपचे खादय पदार्थों के साथ छोटी-छोटी गोलियों (वर्मिकास्टिंग) के रूप में बाहर निकाल देते है । केचुएं की सभी क्रियाएं मिटटी की उपजाऊ शक्ती बढ़ाने में सहयोग देती है । केचुओं को किसान का मित्र भी कहा जाता है । केचुओं का पाचन तंत्र एक मशीन की तरह कार्य करता है । जो विभिन्न लाभदायक जीवाणुओं की वृद्धि के लिये जरुरी है । केचुएं के शरीर में अनेक प्रकार के पाचक रस भी होते है , जो भोजन के जटिल अवयवो को सरल पोषक तत्वो में बदल देते है । जो मिटटी की छोटी-छोटी गोलियों के रूप में त्यागते है , जिन्हे 'वर्मीकास्टिंग' कहते है । इसमे पोषक तत्व , पाचक रस के अतिरिक्त बहुत से विटामिन एवं पौधों के वृद्धि में सहायक रसायन (हार्मोन) भी होते है । वर्मीकास्टिंग में केचुएं के अंडे (कुकून) भी काफी मात्रा में होते है, जो इनकी संख्या में वृद्धि करते है ।

केचुआ खाद के लाभ

- जमीन की जलधारण क्षमता मे वृद्धि ।
- जमींन की उर्वरा शक्ति मे वृद्धि ।
- बंजर जमींन मे सुधार ।
- कम लागत मे अधिक पैदावार ।
- रासायनिक खाद एव दवाइयों मे बचत ।
- पर्यावरण संतुलन मे योगदान ।

केचुएं इसेनिया फोइटीडा

वर्मीकम्पोस्ट बेड

केचुआ खाद बनाने की विधि

१) केचुआ खाद बनाने की जगह चिन्हित करे । आवश्कतानुसार बेड का आकार बनाये (जैसे १०x५x२ फुट) । इस जगह मे ६ फुट ऊँचाई पर घास फूस की झोपड़ी अथवा अन्य शेड बनाये, जिससे केचुओंका धूप एव वर्षा से बचाव हो सके ।

२) चिन्हित जगह को धुम्मस से पीटकर पक्का करे ।

३) सर्वप्रथम फर्श पर पहली परत सुखा बारीक़ कचरा (सब्जी के छिलके /सुखा घास इ.) लगभग ८ इंच मोटाई मे बिछा दे ।

४) दूसरी परत गोबर खाद ६ इंच मोटाई मे बिछा दे ।

५) दोनों परतो को पानी से अच्छी तरह से गीला करके एक रात ठंडा/नरम होने के लिए छोड दे ।

६) दूसरे दिन गोबर की खाद के उपर ३ किलो केचुए फैला दे । (केचुओं की मात्रा बेड के आकार पर निर्भर करती है)

७) तीसरी परत केचुओं के उपर सुखा बारीक़ कचरा करीब ८ इंच परत बिछा दे ।

८) उपरोक्त परतों को पानी से नरम कर गीले बोरे से ढक दे ।

९) एक माह तक पानी का छिडकाव करे । प्रतिदिन लगभग दो बाल्टी (मौसम के अनुसार) पानी डाले ।

१०) एक माह बाद केचुआ खाद की परतों को पलटकर ढक दे एव पुन: २५ दिन तक प्रतिदिन लगभग दो बाल्टी पानी छिडकते रहे ।

११) लगभग २५ दिन बाद केचुए बोरी को चिपके हुए दिखतेही बेड में पानी डालना बंद करे एव ४ दिन वैसाही रहने दे ।

केचुआ खाद प्राप्ति का तरीका

कचरे कूड़े से उपरोक्त तरीके से प्राप्त खाद को प्लास्टिक शीट पर छोटे – छोटे ढेर मे २-३ घंटे हल्के धुप मे रहने दे, इससे केचुए निचे इकठ्ठा हो जाते है । इस प्रकार निचे लगभग दुगने केचुओं को पुन: खाद बनाने के लिए उपयोग करे । उपर की खाद को इकठ्ठा करके बोरे मे संग्रहण करे । इस प्रकार २ माह मे ह्युमस युक्त खाद लगभग ३ क्विंटल (१० x५x२फुट बेड से) तयार हो जाती है ।

वर्मीकम्पोस्ट

वर्मीकम्पोस्ट बेचने हेतु तयार

केचुआ खाद की उपयोगिता

फसलों के लिये एक टन एव साग सब्जी, बगीचे के लिये दो टन प्रति हेक्टर डालने की आवश्यकता होती है । वृक्षारोपण के लिये १ किलोग्राम प्रति पौधा और वन रोपणी के लिये १० किलोग्राम प्रति बेड (१०x१ मी.) खाद का उपयोग करना चाहिए । फलदार वृक्षो के लिये ५-१० किलोग्राम प्रति वृक्ष खाद का उपयोग करना चाहिए ।

एक प्रयोग के अनुसार सागौन, पापलर, सिरीस, करंज, सिस्सू, नीलगिरी,अमलतास आदी, की सूखी पत्तियों का इस्तेमाल जैविक खाद बनाने के लिये किया गया । जिससे यह पाया गया की सागौन एव पापलर की पत्तियों से कम समय में ज्यादा खाद केचुएं द्वारा बनाया जाता है, जिसमे केचुए की संख्या एव पोटयाशियम की मात्रा भी ज्यादा बढती है । रोपणीमे इसे पौधो मे डालनेसे पौधे मजबूत एवं कीट प्रतिरोध होकर विकसित होते है । केचुओ की खाद से पौधों की वृद्धि पर खास प्रभाव पड़ता है ।

वेर्मीकम्पोस्ट सभी प्रकार के फसलों के लिये प्राकृतिक, संपूर्ण एवं संतुलित आहार है । इसके अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिये इसे पौधों में डालने के बाद पत्तों से ढक देना चाहिये तथा इसके साथ रासायनिक उर्वरक, कीटनाशी, फफूंदनाशी या खरपतवारनाशी दवा का प्रयोग नही करना चाहिये ।

सागवान वन क्षेत्रात नैसर्गीक प्रादुर्भावामुळे वाळंत असलेल्या तरूण झाडांवर उपचार करून पुनर्जीवीत करणे

डॉ. पी. बी. मेश्राम

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

ओळख

वन कक्ष क्रमांक 1509 आणी पी–1661, बोरगांव बीट, वन क्षेत्र कन्हान वन विभाग दक्षिण छिन्दवाड़ा मध्ये आहे. हे स्थान छिन्दवाड़ा रसत्यावर सौंसर वरून जवळ–जवळ 10 कि.मी. अंतरावर आहे. हे वनक्षेत्र उष्णकटिबंधीय पर्णपाती क्षेत्र आहे. पूर्व स्थापित जसे–कॉपीस विथ रिजनरेशन (सी.डब्ल्यू.आर.) व्यवस्थापन, इम्प्रूवमेंट (एम.सी.आई) व्यवस्थापन केलेले आहे. वर्तमान व्यवस्थापन वन सिलेक्शन वर्ष 2006–07 मध्ये जुलै–आगस्ट महिण्यात् सागाचे कितीतरी तरूण झाड़ें वाळून गेलेली आढळले, आणि पुष्कळसे झाड़े वाळण्याच्यां वाटेबर होते. उष्णकटिबंधीय वन संशोधन संस्थान, जबलपुर (मध्यप्रदेश) मध्ये कार्यरत शास्त्रज्ञ डॉ0 पी.बी. मेश्राम आणि के.के. सोनी द्वारे या भागाचे निरीक्षण करूण सविस्तर रिपोर्ट सादर केली.

रिर्पोटचे संक्षिप्त विवरण

अर्धे आणी पूर्ण वाळलेल्या वेग–वेगळया गोलाइच्या वृक्षाची विस्तृत माहिती क्र. 1 ते 5 मध्ये दाखविलेली आहे. परीक्षण वेळेस या कम्पार्टमेंट मधिल लक्षणावरूण दोन् श्रेणीमध्ये विभागले. प्रथम श्रेणी म्हणजे–पूर्ण वाळलेली वृक्ष आणि द्वितीय श्रेणि मध्ये अर्धे वाळलेली आणी काही जिवीत शाखा. (चित्र नं – 1) या क्षेत्रात विशेष करूण 40 ते 60 सेंमी गोलाइचे वृक्ष अधिक वाळलेली आढळलीत. हे क्षेत्र बायोटिक कारणामुळे ग्रसित आहे. जसे– आग, गुरेचराई आणि वृक्ष कटाई इत्यादि. सागाचा वृक्षात खासकरून मुळा मध्ये रॉट रोगाचे लक्षण आढळुन आले. पावसाळयांनतर या भागात जमीनीत नमी नसते. या क्षेत्रात जल संधारणाची स्थिति कमी प्रमाणात आढळली. ह्यूमस नसल्यामुळे जमीन पाण्या अभावी कोरडी आणि ठिसूळ बनते ज्यामूळे झाडांना लागलेली पोषक तत्वे त्यात समायोजित नसते. त्यामुळे या भागातीत झाडांची स्थिति फार कमजोर असते शिवाय अशा जमींनीत बीज उत्पादन आणी पुनरूत्पादन फार कमी असते वनाचा हा भाग मुळात कॉपीस पासुन तयार झालेल्यां सागांचा वन आहे. 3 – 4 वेळा झालेल्या फूटव्यानंतर हे वने तयार झाले या वनाची क्वालिटी IV मध्ये येते. या वनांत साग प्रजाती सोबतच रोहण, धावड़ा, पळास, टेमरू, बेल, येन, लेंडिया, अमलतास, चिचवा इत्यादि मुख्य वनस्पति आढळून येतात. लहान झाड़ीं आणि रोपे नष्ट होण्याचा स्थितित आहे. येथील भौगोलिक स्थिति म्हणजे, उतार–चढ़ाव, ज्यास्त जमीन रेतीली, मोठ्या प्रमाणात मुरमाची, कठोर पी. एच. 6.6 स्वरूपाची जमीन आहे.

सागाचे वाळलेले झाड़

वनाचे पूर्ण क्षेत्र दोन्ही कक्ष मिळून 275.76 हे. आणी 279.450 हे. येवढ़े आहे. भौगोलिक संरचना डेक्कन ट्रेप सारखी आहे. या क्षेत्रात पहाड़ी उतारावर मृदा अपरदन (सायल इरोझन) मुळे जमीनीची उर्वरता कमी झाली. म्हणूनच अशा ठिकाणी डीफोलियेटर *हिल्बीया प्यूरा* स्केलेटोनाइजर, *यूटेक्टोना मैकीरेलीस* या सारख्या किटांचा प्रादुर्भाव सतत पहायला मिळते त्यामुळे प्रकाश संश्लेषण कर्यात अळथळा निर्माण होतो.

लक्षण

सागाची झाडे सर्वच प्रकारच्या गोलाई कक्षात (21 से 150 से.मी.) आढळतात यात 45 ते 60 से.मी. गोलाईचे वृक्ष ज्यास्त प्रमाणात वाळलेली आढळली. साग वृक्ष तरूण खाली वाळत आलेला दिसतो फांदया शुद्वा वाळलेल्या दिसल्या यात काही वृक्षे तर अर्धेच वाळलेले होते. असल्या प्रकारचा वृक्षाला मुळात वाढती चा प्रादुर्भाव दिसून आले. अशा वृक्षात रूटरॉट नावाचे फंफूद सुद्वा आढळले.

सागाच्या वाळलेलेल्या झाड़ावर वाळवीचा प्रादुर्भाव

वाळण्यांचे कारण

बोरगांव येथिल विटात कक्ष क्रमांक 1509 आणी 1601 मध्ये 3–4 कॉपीस रोटेशन, जैविक कारणामुळे सागाचे वृक्षाची बाढ आणी मुळात कमजोरी या कारणास्तव सागाची वृक्षे मुख्यतः वाळलेली आढळुन आले. कधि–कधि तर मुळे उधडी पड़त असल्यामुळे स्कार आणि रूटरॉट सारखे लक्षण दिसत होते. वाळलेल्या झाडांचे प्रमाण उतार भागावर ज्यास्त होते. ज्यास्त पावसामुळे जमीनीतिल पोषक तत्वे वाहून गेल्यामुळे मूळाचा भाग उघड़ा पडून झाड़े कमजोर झालीत आग आणी चराई मुळे येथिल क्षेत्र फार कमजोर झाले लगातार आग सतत वन चराई, जामिनीचा उतार भाग यामुळे जमीन अगद कठोर झाली. कमी नमी असल्यामुळे येथे बेल बाभूळ, आणी बोरीच्या झाडांचे प्रमाण अधीक आढळते. साग एक एंडोमाइकोराइझल प्रजाति आहे या भागात साग वुक्षाचे प्रमाण कमी होत आहे. हा एक वृक्ष वाढीसाठी नाकारात्मक संदेश आहे. यामुळे असे आढळले येते. की साग वृक्ष स्वस्थ फांदया, फूल एवं फळा साठी किट रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करण्यासाठी भरपूर उर्जा आणि प्रकाश संश्लेषणामुळे सहज होउ शकते.

अर्धे वाळलेल्या सागाच्या झाडामधे
बन्डिग एवं मल्चिंग

मृदा विश्लेषण

बोरगांव बीटातिल दोन्ही कक्षामधुण मातीचे काही नमूने घेतले, त्यात मातीमधिल पोषक तत्वे, घुलनशीलता, आणी मातिचे पी.एच. प्रमाण तपासल्यानंतर ज्या नमुन्यात पी.एच. 6.5 ते 7 आहे त्यात पोषक तत्व ज्यास्त प्रमाणात असते ज्या नमुन्याचे पी.एच. (6.00 पेक्षा कमी) असते ते आम्लीय, मातीच्या नमुन्यात नाईट्रोजन, पौटेशियम अणी फॉस्फोरसचे कमी अधिक प्रमाण असते.

कन्हान साग वनक्षेत्रात मृदा नमुन्यात पोषक तत्व पुष्कळ कमी आढळते यावरूण निदर्शनात येते की वृक्षाच्या जड़तंत्राजबळील सूक्ष्म जीवांची क्रियाविधी कमी झाली असल्यामुणे वृक्षाच्या मुळाजवळील भाग कठोर जमींनयुक्त बनल्या मुळे मृदा पोषक तत्वात कमी झाली आणी सहायक बैटीरियातील कमी वृद्दिमुळे मुळांचा भाग मृत होत जातो ज्यामुळे वृक्षे अधिक प्रमाणात वाळलेली दिसतात वर्तमान स्थिति पहाता या क्षेत्रात साग वृक्षाच्या विकासासाठी पाहाणी आणि सुधार यावर सतत भर देण्याची आवश्यकता आहे.

प्रस्तावित उपचार

बोरगांव बीटात दोन्ही कक्षासाठी उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर द्वारे खालील उपाय सुचविले आहेत –

1. क्षेत्रातील कटाई बंद करणे.
2. प्रस्तावित जागेत साग रोपे लावून पुनर्उत्पादन वाढवीणे.
3. अग्नी आणि चराई यावर सुरक्षा करावी.
4. प्रभावित झाडांना माती चढविणे कंटूर नाली द्वारा पाणी संरक्षण, संवर्धन, शेणखत, रेत, पालापाचोळा, यूरिया आणि पौटेश याचे मिश्रण वापरावें.
5. कॉपरसल्फेट, चूना, क्लोरोपायरीफास (0.05 प्रतिशत) 2 मि.ली. प्रति लीटर पाण्यात (5 : 5 : 50) किटनाशक औषध प्रभावित वृक्षाच्या खोडाला लावावें.
6. वाळलेल्या आणी संक्रमित वृक्षानां कापून काढावें
7. क्लीयर फेलींगचा भागातच रोपण करावें.

सागाच्या झाड़ावर एक वर्षानन्तर नवीन पांन

वन क्षेत्रात उपचार प्रकिया

साग वन क्षेत्रामध्ये जोपासना करण्यासाठी खालील उपाययोजना करणे आवश्यक आहे –

1. प्रभावित क्षेत्रात 278 हें. चे सीमांकन.
2. एकून 11110 अर्धे वाळलल्या झाडांवर उपचार
3. पूर्ण वाळलेल्या झाडांचे (3810) मार्कींग करून कटाईसाठी प्रस्ताव
4. अर्धे वाळलेल्या झाडांची मोजणी करून त्यावर उपचार करने
5. 20–25 हेक्टरांचे 1 किवां 2 कक्षा जवळ जवळ 5 वर्षापर्यन्त जैविक कारकांवर बंदि करून साग आणि सहयोगी झाडांचा अभ्यास करावा. बियाचे नमुने अंकूरण तपासण्यासाठी दरवर्षी एकत्र करावें. मातीमधील उपयोगी सुक्ष्म जिवाणुचे अध्ययन करावें. वृक्षाचा संपूर्ण विकास आणी त्यावरील किट रोगांचा सुद्वा पूर्ण अभ्यास करायला पाहीजे.

व्हाइट ग्रब्स (सफेद इल्लियॉ) वन रोपणी का एक महत्वपूर्ण कीट

डॉ. संजय पौनीकर, मंसूर अहमद एंव डॉ. नितिन कुलकर्णी

वन कीट विज्ञान प्रभाग, उष्ण कटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

व्हाइट ग्रब्स के नाम से प्रख्यात सफेद इल्लियॉ विश्वभर में वन रोपणी, विभिन्न फसलों, लॉन और घास के मैदानों का एक उपद्रवी एंव महत्वपूर्ण कीट है। व्हाइट ग्रब्स कीट गण कोलोप्टेरा (Order-Coleoptera) व स्कॉराबिडिए (Family-Scarabaeidae) परिवार की एक मुख्य प्रजाति है। पूरे विश्व में इस परिवार की 3000 से ज्यादा प्रजातियॉ पायी जाती है। वन रोपणी के पौधे जैसे सागौन, बांम्बू, साल, सिरिस, अरडू, अर्जुन, शिशू, ईमली एंव अन्य, प्राकृतिक वन के विविध प्रकार के वृक्ष, वृक्षारोपण, कृषी एंव वृक्षारोपण फसलों (बादाम, काजू, नारियल, मूगंफली, गेहु, चावल, गन्ना, चना, सोंयाबीन, कपास, सुर्यफुल, विभिन्न सब्जिया एंव अन्य), बागवानी (सेब, आम, अंगूर, संत्रा व अन्य), लॉन और घास के मैदानों को बहुत बडे पैमाने नुकसान करते है। एक रिर्पोट के अनुसार व्हाइट ग्रब्स देश की सभी मुख्य फसलों का 40 से 80 प्रतिशत नुकसान करते पाये गये है।

व्हाइट ग्रब्स ये मिट्टी में रहने वाले और पौधों के जड़ को खाने वाले अवयस्क स्कॉरब बीटल (*Scarab Beetles*) है। पौधों के जड़ को खाते है इसलिए इनको जड़ खाने वाले ग्रब्स (*Root Grubs*) भी कहते है। ये मिट्टी से मई–जून महिने में बाहर निकलते है, इसलिए इनको मई–जून बीटल (*May-June Beetle*) या चाफर बीटल (*Chaffer-Beetle*) भी कहते है। वयस्क बीटल निशाचर होते है और श्याम ढलते ही मिट्टी से बाहर आकर आसपास के वृक्षों पर बैठते है। अवयस्क व वयस्क स्कॉरब बीटल दोनो ही, विविध प्रकार के वृक्षों, वृक्षारोपण क्षेत्रो के पौधे, प्राकृतिक वन क्षेत्रो के पेड़ विविध प्रकार के वृक्षारोपण, कृषि, एंव बागवानी फसलो को, बहुत नुकसान करने की वजह से बडे पैमाने में आर्थिक हानी होती है। व्हाइट ग्रब्स देश की विविध प्रकार की फसलों का बहुत बडे पैमाने नुकसान करने की वजह से इसे राष्ट्रीय पेस्ट (पीड़क) (National Pest) भी की जाता है।

भारतीय उपमहाद्विप में व्हाइट ग्रब्स की 50 से ज्यादा प्रजातियॉ पायी जाती है। इनमे से अपने देश में 14 प्रजातियॉ अति महत्वपूर्ण है। इस कीट का प्रकोप लगभग सभी तरह कि वन, कृषि और बागवानी फसलों पर होता है। व्हाइट ग्रब्स को एक बहुत ही उपद्रवी और महत्वपूर्ण कीट के रूप मे पहचांना जाता है। भारत में व्हाइट ग्रब्स की बहुत सी महत्वपूर्ण प्रजातियॉ पायी जाती है। इनमें प्रमुख है, होलोट्राइकिया प्रजाति (*Holotrichia* spp.), पॉयलोगॅन्थस प्रजाति (*Phyllognathus* spp.), एपोगोनिया प्रजाति (*Apogonia* spp.), ब्राहमिना प्रजाति (*Brahmina* spp.), ल्युकोफोलिस प्रजाति (*Leucopholis* spp.), अनोमलिया प्रजाति (*Anomala* spp.), मिलोलोन्धा प्रजाति (*Melolontha spp.*), सायजोनिका प्रजाति (*Schizonycha* spp), मालडेरा प्रजाति (*Maldera* spp.) पायी जाती है।

मध्यभारत के मध्यप्रदेश, महाराष्ट् व छत्तीसगढ राज्यों के वन विभाग ;थ्वतमेज क्मचंतजउमदजेद्ध व वन विकास निगम (Forest Development Corporation) के वन रोपणी में व्हाइट ग्रब्स का बहुत बडे पैमाने में प्रकोप पाया जाता है। इन राज्यों में हजारों बेडो में सागौन के (*Tectona grandis*) वन फसल (Forestry Crops) वन वृक्षारोपण (Forest Plantations) करने के लिए हर साल ली जाती है। व्हाइट ग्रब्स बेड में रोपे गये पौधों की जड़ को खाकर

सागौन का बहुत बडे पैमाने नुकसान करते है। ये सफेद इल्लियॉ बेड मे लगाये गये सागौन के जड़ को नीचे से खाकर जड़ को कमजोर करते है। सफेद इल्ली अपने मजबूत जबड़े से जड़ को नीचे से काट डालती है, इसकी वजह से जड़ सुख कर आखिर में मर जाती है। इस इल्लियों के कारण बेड़ के पौधों को बहुत बडे पैमाने नुकसान सहना पडता है। इसकी वजह से रोपणी को बहुत बड़ी वित्तहानी सहनी पडती है एंव सागौन के पौधों का उत्पादन कम होता है और वन वृक्षारोपण में पौधो की संख्या कम होने की वजह से लक्ष्य समय पर पूरा नही हो पाता है।

हाल ही में महाराष्ट्र के नागपुर जिले में महाराष्ट्र वन विकास निगम के रामड़ोंगरी वन रोपणी में तीन प्रकार के व्हाइट ग्रब्स की प्रजातियॉ *होलोट्राइकिया रस्टिका* (*Holotrichia rustica*), *होलोट्राइकिया मूसीड़ा* (*H. mucida*) व *सायजोनिका रूफिकोलिस* (*Schizonycha ruficollis*) पहली बार सागौन के पौधों के जड़ों पर प्रकोप पाया गया।विश्व में पहली बार इस प्रजाति के व्हाइट ग्रब्स का प्रकोप सागौन के पौधों के जड़ों पर पाया गया। इस कीट के कारण हजारों बेड़ो के पौधों नष्ट हो गये थे।

व्हाइट ग्रब्स अपना जीवन चक्र जमीन के नीचे मिट्टी में पूरा करते है। इस कीट को रहने एंव बढने के लिए रेतीली जमीन की आवश्यकता पडती है। वयस्क कीट मानसून के पहले या बाद में मई –जुन महिने में अचानक से वातावरण में नमी बढने से मिट्टी के बाहर आकर आसपास के वृक्षों जैसे बेर, खैर, नीम, पलाश, बबूल, जामुन एंव सहिजन के पत्ते खाते है या जिस पेड के पत्ते नही खाते उस पर भी बैठते है और वयस्क नर और मादा मिलन करते है। माद मिलन करने के तीन दिन बाद साबुदाने जैसे आकार में सफेद 20–30 अंडे मिट्टी में देती है। 7 से 10 दिन के बाद अंडे से छोटी सफेद ईल्लियॉ बाहर आकर आसपास छोटे–छोटे पौधों की जड़ों को खाते हुये बढते है। ये इल्लियॉ अंग्रेजी के 'C' आकार जैसी दिखती है। इन इल्लियों को वयस्क होने के लिए लगभग 82 ये 113 दिन की अवधी लगती है। ये इल्लियॉ अपने चारों तरफ एक प्रकार का चेम्बर बनाती है जिससे वो उपर–निचे, आडी–तिरछी जाकर विविध प्रकार के पौधों तक पहुॅच कर उनकी जड़ों को खाती है। सफेद इल्लियॉ जुलाई से मध्य अक्टूबर तक पौधों की जड़ो को खाने में सक्रिय रहती है। नवंबर आते आते इल्लियॉ कोकून (प्यूपा) में परिवर्तित होती है। इल्लियॉ कोकून में परिवर्तित होने के पहले 40 ते 70 से.मी. या इससे ज्यादा जमीन के अंदर अच्छी नमी वाली जगह पर जाकर रहती है। कोंकून की अवधी लगभग 14–15 दिन की रहती है । कोकून से वयस्क बीटल बाहर निकलकर आसपास के वृक्षों के पत्ते खाते है। शुरू में वयस्क बीटल का रंग सफेद होता है, धीरे धीरे बाद में गहरे भूरे रंग का होने लगता है और जब तक बारिश का मौसम नही आ जाता तब तक जमिन में ही बिना हिले डुले पडे रहते है। सफेद इल्लियों को अपना जीवन काल पूरा करने में लगभग 122 दिन लगते है और वर्ष में एक ही पीढी (Generation) तैयार होती है

व्हाइट ग्रब्स वन रोपणी के पौधों व खेत की फसलों की जड़ को खाकर कमजोर करती है। इसकी वजह से पौधें सुखकर मर जाते है, और पौधों को बहुत बडे पैमाने पर आर्थिक क्षति होती है। व्हाइट ग्रब्स को नियंत्रित करना दुसरे कीटों के मुकाबले बहुत कठिन है। इस कीट को समन्वेकित कीट प्रबंधन (Integrated Pest Management) से नियंत्रित किया जा सकता है, जिसमें रासायनिक कीटकनाशक, कवक (Fungi) परजीवी (Parasites and Predators), जीवाणू (Bacteria), विषाणू (Viruses) और (Entomopathogenic Nematodes) प्रमुख है।

पहले बेड़ में सफेद इल्लियों का प्रकोप दिखने पर रासायनिक कीटकनाशकों का उपयोग किया जाता था और ये ही एक उनको नियंत्रित करनें का उपाय था। पर निरंतर अनुसंधानों ये पता चला कि, वयस्क बीटल को भी रासायनिक कीटकनाशकों से नियंत्रित किया जा सकता है। रासायनिक कीटकनाशक मोनोकोटॉफास (0.05%) या डाइमोथोएट (0.1%) का छिडकाव शाम को उस पेड़ पर करन चाहिए जिस पेड़ के वयस्क बीटल पत्ते खाते है। कीटकानाशक

उपचारित पत्ते खाने के बाद दुसरे दिन सुबह बीटल पेड़ के नीचे मरे पड़े मिलते है। गर्मी के दिनों में वन रोपणी को गहराई तक जुताई करनी चाहिए, जिससे इल्लियॉ बाहर आती है, ये धूप मर जाती है या इनको पक्षी खाते है, या इल्लियों कों रॉकेल तेल में डालकर कर मार देना चाहिए। जिससे इनकी संख्या पर काबू पाया जा सकता है। वन रोपणी के बेडों को तैयार करते समय 10 प्रतिशत की मात्रा में फॉरेट के साथ क्लोरोफायरीफास कीटकनाशक का मिश्रण मिलाकर बेडों में डालने से सफेद इल्लियों का प्रकोप होने का खतरा कम होता है। हाल ही मे कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि (एन्टोमोपॅथोजेनिक निमेटोड्स) का सफेद इल्लियों पर किये गये अनुसंधानों से ये पता चला कि, इन इल्लियों को इनसे भी नियंत्रित किया जा सकता है और ये सफेद इल्लियों पर प्रभावी जैविक कीटनाशक पाया गया है।

वन रोपणी में सफेद इल्लियों का प्रकोप

कीट रोगाण्विक सूत्रकृमि (एन्टोमोपॅथोजेनिक निमेटोड्स) से संक्रमित सफेद इल्लियॉ

वयस्क बीटल बेर और रिमझा कि पत्तियॉ खाते हूये

पंचगव्य - एक आदर्श जैविक पौधआहार

अविरल असैया एवं राजेन्द्र कुमार बागड़े

वानिकी अनुसंधान एवं मानव संसाधन विकास केन्द्र, छिन्दवाड़ा

पंचगव्य गाय के विभिन्न उत्पादों से बना एक ऐसा प्राकृतिक आदान है। जिसमें पौधों की बढ़वार सुनिश्चित करने एवं रोग रोधक क्षमता है। यह नौ तरह के पदार्थो का मिश्रण है। जिसमें गाय का गोबर, गौ मूत्र, दूध, दही, शीरा, घी, केला, कच्चा नारियल एवं जल का प्रयोग होता हैं। अगर उक्त पदार्थो का सही मिश्रण तैयार किया जाये तो यह एक अद्भूत पादप औषधी का काम करता हैं। पंचगव्य को तैयार करने के लिए 7 किलो ग्राम गाय के गोबर में एक किलोग्राम गाय का घी मिलाकर सुबह और शाम तीन दिन तक अच्छी तरह मिलाकर घोल बनाया जाता हैं। तीन दिन पश्चात इसमें 10 लीटर गौ मूत्र एवं 10 लीटर पानी मिलाकर लगभग 15 दिन तक रोजाना सुबह और शाम अच्छी तरह से हिलाया जाता हैं। इसके 15 दिन पश्चात 3 लीटर गाय का दूध, 2 लीटर दही, 3 लीटर कच्चे नारियल का पानी, 3 लीटर शीरा एवं एक दर्जन पका हुआ केला अच्छी तरह से मिलाकर घोल तैयार किया जाता हैं जो लगभग 30 दिन में बनकर तैयार हो जाता हैं। इसको पंचगव्य कहा जाता हैं। ऊपर बताये गये सभी पदार्थो को एक चौड़े मुंह वाले मिट्टी के घड़े या सीमेंट से बने हीद में डालकर लगभग 30 दिन तक सुबह और शाम अच्छी तरह से हिलाया जाता है। इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि इसमें भैंस का दूध आदि का प्रयोग न हो, केवल देशी प्रजाति की गाय के पदार्थो का ही प्रयोग करें। घरेलू मक्खियों को इस घोल में न पनपन दें इसके लिये इसको बारीक जाली या कपड़े से ढ़क कर रखें ताकि लार्वा आदि न पनपनें पायें।

भौतिक एवं रासायनिक गुणों की जॉच में यह पाया गया हैं कि इसके अन्दर लगभग सभी प्रकार के सूक्ष्म पोषक तत्वों के अलावा पौध वृद्धि हारमोन जैसे कि इन्डोल ऐसिटिक अम्ल, जीबरैलिक अम्ल आदि प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

किण्वन करने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं जैसा कि यीस्ट, लैक्टोबैसिलस आदि की संख्या में बढ़ोत्तरी दुग्ध पदार्थो एवं शीरे की वजह से बहुत ज्यादा होती हैं। पी एच मान में कमी का मुख्य कारण जैविक अम्लों का किण्वन के दौरान रासायनिक क्रिया के द्वारा उत्पन्न होने से हैं। लैक्टोबैसिलस नामक जीवाणुओं के द्वारा बहुत तरह के लाभकारी मेटाबोलाइटस जैसे कि जैविक अम्ल, हाईड्रोजन पराक्साईड एवं कुछ एन्टी बायोटिक उत्पन्न होते है जो बीमारी फैलाने वाले रोगाणुओं की बढ़वार रोकते हैं। रासायनिक जॉच से पता चला हैं कि इसमें कई तरह के वसायुक्त अम्ल, एलकेन एवं एल्कोहल आदि भी पाये जाते हैं।

अनुमोदित मात्रा

1. स्प्रे माध्यम – परीक्षणों से पता चला हैं कि 3 प्रतिशत पंचगव्य का घोल सबसे प्रभावी होता हैं । तीन लीटर पंचगव्य लगभग 100 लीटर पानी में मिलाकर सभी प्रकार की फसलों पर इस्तेमाल किया जा सकता हैं। हाथ के द्वारा चलने वाली स्प्रे मशीन का पोर साईज से अधिक होना चाहिये ताकि नोजल बंद न होने पाये।
2. सिंचाई जल के साथ – 50 लीटर पंचगव्य प्रति हेक्टेयर की मात्रा से सिंचाई जल के साथ या ड्रिप सिंचाई जल के साथ भी प्रयोग किया जा सकता हैं।
3. बीज/पौध उपचार – 3 प्रतिशत पंचगव्य के घोल में बीजो को लगभग 20 मिनट तक भिगोये तत्पश्चात् छाया में सुखाकर बिजाई करें । सब्जियों की पौध जैसे टमाटर, हरी मिर्च, गोभी आदि को भी उपरोक्त विधि से उपचारित किया जा सकता है।

हल्दी, अदरक के राइजोम एवं गन्ने के सैट्स को लगभग 30 मिनट तक भिगोने के पश्चात् बुवाई करें।

बीज भंडारण – 3 प्रतिशत पंचगव्य के घोल में भंडारित किये जाने वाले बीजों को भिगोकर एवं अच्छी तरह से सुखाकर भंडारित करने से बीज सुरक्षित रहते हैं।

पंचगव्य के लाभ

पत्ती – पौधों के ऊपर यदि पंचगव्य के 3 प्रतिशत घोल का स्प्रे किया जाये तो पत्तियों का आकार बड़ा होगा, जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया तेज होगी एवं अधिक कार्बोहाईड्रेट्स का निर्माण होगा।

तना – पंचगव्य के उपयोग से तने अधिक मजबूत होते हैं एवं ज्यादा संख्या में शाखायें निकलती हैं जिससे फलों की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती हैं।

जड़ – ऐसा देखा गया हैं कि पंचगव्य उपचारित पौधों की जड़े अधिक तेजी से फैलती हैं, जिससे पौधों को सभी पोषक तत्व आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं।

उपज – यह प्रायः देखा गया है कि साधारणतया जब खेतों को रासायनिक खेती से जैविक खेती में तब्दील किया जाता है। तो उपज कम हो जाती हैं लेकिन पंचगव्य के उपयोग से उपज स्थिर एवं फसल लगभग 15 दिन पहले पकती है और सब्जियों, फलों एवं अनाज के स्वाद में भी बढ़ोत्तरी होती हैं। पंचगव्य के प्रयोग से रासायनिक आदानों से बचा जा सकता हैं।

सूखा वहन क्षमता – पंचगव्य के प्रयोग से पत्तियों के ऊपर एक पतली परत जम जाती है। जिससे पौधों द्वारा वाष्पीकरण क्रिया द्वारा होने वाले पानी के ह्रास में कमी आती है। पौधों की जड़ का अधिक फैलाव होने से पौधे में सूखा वहन करने की क्षमता बढ़ जाती हैं। इस तरह से सिंचाई जल की लगभग 30 प्रतिशत जरूरत कम की जा सकती हैं।

पंचगव्य के घटक

गाय का गोबर

गोमूत्र

गाय का घी

गाय का दुध

पानी

गाय का दही

गुड़

कच्चा नारियल

पका केला

पंचगव्य के भौतिक एवं रासायनिक गुण

रासायनिक घटक	
पी. एच.	5.45
ई. सी.	10.22
कुल नत्रजन	229
कुल फास्फोरस	209
कुल पोटाश	232
सोडियम	90
कैल्शियम	25
आई.ए.ए.	8.5
जी.ए.	3.5
सूक्ष्म जीव संख्या	
कुल फफूंदी	38800 / मि.ली.
कुल बैक्टीरिया जीवाणु	1880000 / मि.ली.
लैक्टोबेसिलस जीवाणु	2260000 / मि.ली.
कुल वायुवीय जीवाणु	10000 / मि.ली.
अम्ल उत्पादक जीवाणु	360 / मि.ली.
मेथानोजेन जीवाणु	250 / मि.ली.

पंचगव्य के जैविक घटक

क.सं.	फैटी अम्ल	एल्केन्स	अल्कोनॉल एवं एल्कोहल
1	ओलिक एसिड्स	डेकेन	हेप्टानील
2	पामिटिक एसिड	ओक्टेन	टेट्राकोसनॉल
3	माइरिस्टिक	हेप्टेन	हेक्साडेक्नॉल
4	डेकोनोर	हेक्साडेकेन	ओक्टाडेकोनॉल
5	डेकोनामिक	ओरिडेकेन	मेथनॉल, प्रोपनॉल, ब्यूटेनॉल एवं इथेनॉल
6	ओक्टानोइक		
7	हेक्सानोइक		
8	ओक्टाईकोनोइक		
9	टेट्राडीकोनोइक		

पंचगव्य का प्रयोग अन्तराल

1. फूल आने से पूर्व – 15 दिन में एक या दो बार स्प्रे फसल अनुसार
2. फली बनने के समय – 10 दिन में एक से दो बार, स्प्रे
3. फल पकते समय – फली पकते समय

विभिन्न फसलों में पंचगव्य का प्रयोग

धान	पौध रोपण के 10, 15, 30 एवं 50 दिन पश्चात्
सूरजमुखी	बुआई के 30, 45 एवं 60 दिन पश्चात्
उड़द	वर्षा आधारित – पहला स्प्रे फूल आते समय दोबारा 15 दिन पश्चात्
मूंग	सिंचित – 15, 25 एवं 40 दिन पश्चात्
अरण्डी	बुआई के 30 एवं 45 दिन पश्चात्
मूंगफली	बुआई के 25 एवं 30 दिन पश्चात
भिंडी	बुआई के 30 45, 60 एवं 75 दिन पश्चात्
टमाटर	नर्सरी और पौध रोपाई के 40 दिन पश्चात् – बीज उपचार 1 प्रतिशत घोल 12 घंटे तक
प्याज	पौध रोपण के 0, 45 एवं 60 दिन पश्चात्
गुलाब	छंटाई एवं कली बनते समय
चमेली	कली बनते समय
वनीला	रोपाई से पहले वनीला सैट्स को भिगोकर रखना

Ruddy Marsh Skimmer : A Beneficial Insect

Kritish De

'Dragonfly' is an important group of predatory insects belonging to the order – Odonata. There are about 3011 species of dragonflies reported from the World, of which 271 species are reported from India. *Crocothemis servilia* (Drury, 1770), commonly called 'Ruddy Marsh Skimmer' is a very common and widespread species of dragonfly. It is also known as 'scarlet skimmer' and 'crimson darter.'

Systematic Position

Phylum : Arthropoda

Class : Insecta

Order : Odonata

Suborder : Epiprocta

Infraorder : Anisoptera

Family : Libellulidae

Genus : *Crocothemis* Brauer, 1868

Species : *C. servilia* (Drury, 1770)

Distribution

It is an extremely widespread species. It occurs in Indomalaya ecozone (mainland tropical and subtropical Asia, Japan, the Ryukyu Archipelago, the greater and lesser Sunda isles, the Philippines and Sulawesi), Afrotropic ecozone (part of the Arabian Peninsula) and Palearctic ecozone (in the Levant, Iraq, Iran, Armenia and Turkey). It was accidentally introduced into Hawaii and Florida in the USA, and spread to Cuba from Florida.

Habit and Habitat: It lives near freshwater wetlands such as marshes, lakes, ponds, slowly moving streams etc. Adults perch on plants near these wetlands. It is a major predator of mosquito (especially, larva of this insect feeds on mosquito larva). It also feeds on small insects like flies, bees, ants, wasps, and very rarely butterflies. It is among the fastest flying insects in the world. It can fly backwards, change direction in mid-air and hover for up to a minute.

Morphological Description of Adult Male

Body is divided into head, thorax and abdomen. Face is red in color. Head has one pair of large, red colored compound eyes (that cover almost entire head) and three ocelli. Antennae are very short and bristle like. Mouthparts are chewing type. Thorax is red in color. It has three pairs of legs and two pairs of wings. Legs are reddish in color and capable of catching prey during flight. Front and hind wings are nearly equal in size. Wings are long and transparent. The wings have pterostigma (a thickened, hemolymph filled and reddish area bounded by veins). Abdomen is slender and red in color. A black colored straight line is present on the dorsal surface of the abdomen.

Morphological Description of Adult Female

Body is divided into head, thorax and abdomen. Face is pale yellow in color. Head

has one pair of large, yellowish compound eyes (that cover almost entire head) and three ocelli. Antennae are very short and bristle like. Mouthparts are chewing type. Thorax is yellowish in color. It has three pairs of legs and two pairs of wings. Legs are yellowish brown in color and capable of catching prey during flight. Front and hind wings are nearly equal in size. Wings are long and transparent. The wings have pterostigma. Abdomen is slender and yellow in color. A black colored straight line present on the dorsal surface of the abdomen.

Nymph

The nymphs have shorter and more robust bodies than the adults. In addition to lacking wings, their eyes are smaller, their antennae longer, and their heads are less mobile than in the adult. The labium is adapted into a unique prehensile organ for grasping prey. It respires through rectal gill located in abdomen.

Reproduction

Female lay eggs in fresh water wetlands in rainy season (this is the main reason to find adults near freshwater ecosystems). The eggs hatch to produce pronymphs which live off the nutrients that were in the egg. They then develop into instars with few molts. The nymph lives predatory life - it feeds on other aquatic organisms, including small fishes and larva of other insects especially mosquitoes. The nymphs grow and molt into the flying immature adults which later transform into reproductive adults.

Beneficial Role: Ruddy Marsh Skimmer is a predatory insect that feeds on larva and adults of other insects. Research shows that periodic augmentative release of predaceous larvae of *Crocothemis servilia* during the monsoon season (the time when Dengue Fever was being transmitted by the mosquito) in Yangon, Myanmar rapidly depressed the *Aedes aegypti* mosquito populations to a level lower than could have been achieved by any other known method, including treatment by chemical insecticide. It is also reported that, it is an effective predator of lepidopteran pests of rice fields.

अगस्त (*Sesbania grandiflora* Linn.): एक बहु-उपयोगी वृक्ष

डॉ. विशाखा कुंभारे

वानिकी अनुसंधान एवं मानव संसाधन विकास केन्द्र, छिन्दवाड़ा

अगस्त / हदगा (*Sesbania grandiflora*) एक जलद वाढणारी आणि कृषिवानिकी साठी महत्वपूर्ण प्रजाति आहे ज्याद्वारे पशुचारा, इंधन, हरित खाद उपलब्ध होते. हया प्रजातिचा वापर भूमि सुधार कार्यक्रमात ही केला जातो. हया झाडाचे सर्व भाग औषधि रुपात वापरले जातात. अगस्त्य हे लेगुमिनोसी परिवारातली असल्यामुळे त्यात मातिची उर्वराशक्ति वाढवन्याची क्षमता आहे. हयात अनेक रासायनिक तत्व आहेत जसे टेनिन, फ्लावोनोइड्स, सपोनिन, फायटोस्टेरोल, टरपीन, फेनोल, डीन्क इत्यादि आणि म्हणुनच ह्याचे उपयोग प्राचीन काळापासून अनेक रोगावर औषधिच्या रूपात केल्याचे आढळते. अगस्त्य हा शब्द मुख्यत्वे करून उर्दू मधे अगस्त असा म्हटला जातो. तसेच संस्कृत मधे 'अगस्त्य, मुनिद्रुम, बंग्सेना, वक्रपुषप्, अगस्ति' हया नावाने प्रसिद्ध आहे. 'अगसी, अगची' हे कन्नड़ मधे, 'हदगा, अगस्त' हिंदीत, 'स्वाम्प पी, सेस्बन' – इंग्रजी मधे, 'अगथियो, अयाथियो'-गुजरातीत, 'मडगा, हदगा, अगस्त, शेवरी'-मराठीत, 'अगुस्त, बक, बकफल'-बंगालीत, 'बुको, अत्ति, अरगत्ति'- मलयालम मधे आणि 'ओगोस्ती' – उड़िया मधे अशा अनेक नावाने ओळखल्या जाते.

उपलब्धता

हया प्रजातिचे नाव अगस्त्य पड़णयाचे कारण असे की ज्यावेळी अगस्त्य तारा आकाशात दिसतो त्यावेळी हया झाडाला पुष्पान्कन होते आणि म्हणून शिघ्रपुष्प म्हटले जाते शिवाय थोड़े वाक् असल्यामुळे वक्रपुष्प, अर्ध चन्द्रचा आकारामुळे अर्धेन्दुपुष्पक ही संबोधले गेले आहे आणि फळ दिर्घफलक आहे. अगस्तचे झाड ८-१५ मीटर उंच आणि २५-३० से. मी. रुन्दिपर्यंत वाढते. ह्याचे पुष्पांकन शरद ऋतु आणि फलांकन शीत ऋतुत होते. आयुर्वेदात प्रमुख्याने अगस्तचे चार प्रकार नमूद आहेत. श्वेत, पित्त, नील आणि रक्त असे म्हणतात. ही नावे फुलांचा रंगावरून देण्यात आली असावी. भारतात लाल आणि श्वेत फुलांचे प्रकार आढळतात. हया दोन्ही प्रकारचे झाड बरयाच आशियाई देशामधे उपलब्ध आहेत जसे भारत, मलेशिया, इंडोनेसिया, थाईलैंड आणि फ़िलीपीन्स. भारतात मुख्यत्वे अगस्तची प्रजाति बंगाल आणि दक्षिण भारतात आहेत. आजकाल आपल्या देशात ह्यांचे रोपण पंजाब, दिल्ली, पश्चिम बंगाल, ओडिसा, आसाम, गुजरात, केरळ, महाराष्ट्र आणि अंदमान मधे होते.

औषधि गूण

अगस्तचे मूळ, साल, पान, फूल आणि फळ ह्यांचे औषधि गुण असल्यामुळे मुख्यत्वे आयुर्वेदात अनेक प्रकारे वर्णन केले आहे. कफ-पित्तहार, कक्षृश्य, बल्य, मेध्य, शूल प्राशनम, व्रणशोधक आणि व्रणरोपक, सार, शुक्रल, रक्त-पित्त शामक, ज्वराघ्न, विषम ज्वर प्रतिबंधक, कसहर, श्लेशमनीसारक, शिरोविरेचन, कृमिघ्न, विषनाशक, स्वेद्जनन, त्वचाग्रुही आणि गर्भाशय शोथहरक आहे. पानांचा उपयोग हृदयरोग, किडनी विकार, फिट, डोकेदुखी, दमा, सर्दी-खोकला, ताप हयावर केला जातो. सालीचा उपयोग पोटासम्बन्धी रोग आणि फुलांचा रसाचा उपयोग जखम बरी होण्यास वापरल्या जातो. हया

सर्वाव्यतिरिक्त अनेक उपयोग जगातल्या वेगवेगळया भागात केल्या गेल्याचे अनुसंधानातुन दिसून येते. फुल आणि पानाचा वापर तुप बनवन्यासाठी केला जातो जे रातान्धळेपण दूर करण्यासाठी उपयोगी आहे. चतुर्थक ज्वरात पानाचा रसाचा उल्लेख आहे. फुल आणि पानांचा वापर कैंसर रोगावर केला जातो. पानांचा लगदा, काळीमिरी आणि गोमुत्राचे मिश्रण फिट रोगावर उपयोगी आहे. हया मिश्रणाचे नाकात थेम्ब टाकले जाते. पानांचा चहात एंटीबायोटिक, एंटीओक्सीडन्ट आणि कृमिनाशक असे गुण आहेत. सम्पूर्ण जगात मधुमेह हया रोगाने बरेच लोक ग्रासले गेले आहेत. अनुसंधानातून असे कळते की अगस्त्य्या सालिचा काढ़ा ज्वर आणि पानांचा काढ़ा मधुमेहात घेतल्या जातो तसेच सिगरेटचा धुरामू ळे होणारे दुष्परिणामही ह्याने कमी होतात. सर्पदंशात पांढरया फुलांचे साल पाण्यात वाटून देण्यात येते. महिलांचा श्वेतप्रदर रोगावर हया झाडाची पाने दुधात उकळून दिवसातून दोनवेळा घेण्याचे उल्लेख आहेत.

पौष्टिक गूण

हया झाडाची फुले आणि पाने पौष्टिक असल्यामुळे आहारात वापरली जातात. ह्यांचा उपयोग भाजी आणि लोणचे बनवन्यासाठी केला जातो. पानामधे पौष्टिक घटक अमीनो एसिड, खनिज द्रव्य, विटामिन-ए, विटामिन-सी, विटामिन-ई, थायमिन, रिबोफ्लाविन, निकोटिनिक एसिड भरपूर आहे. पानांमधे पौष्टिक तत्त्व (प्रति १०० ग्राम)-प्रोटीन (८.४ ग्रा), वसा (१.४ ग्रा), कार्बोहाइड्रेट्स (११.८ ग्रा), रेषा (२.२ ग्रा), खनिज (३.१ ग्रा), विटामिन – ए (५०३७ ug), विटामिन-सी (१६९ मी.ग्रा), थायमिन (०.२१ मी ग्रा) , रिबोफ्लाविन (०.०९ मी ग्रा), नायसीन (१.२ मी ग्रा), कैल्सियम (११३० मी ग्रा), लोह (३.९ मी ग्रा) आणि फोस्फोरस (८० मी ग्रा) आहे. पानांपासून *'लीफ प्रोटीन कंसन्ट्रेट'* तयार केले जाते जे पुढे खाद्य पदार्थात वापरल्या जाऊ शकते. *लीफ प्रोटीन कंसन्ट्रेट'* मधे प्रोटीन (४८.१८%), खनिज (५.०८%), वसा (२५.४८%), रेषा (०.७७%), कैल्सियम, फोस्फोरस, लोह आणि पोटासियम शिवाय पोलीफेनोल तत्त्व (७.९१%) हे जास्त प्रमाणात आढळतात.

खाद्य पदार्थ

आजकाल आरोग्याप्रती जन सामान्यान्मधे जागरूकता वाढलेली दिसून येते. त्यामुळे रोजच्या आहारात आपल्याला पौष्टिक पदार्थांचा समावेश करायला पाहिजे. अलीकडे अगस्तच्या पानांचा वापर वेगवेगळे खाद्य पदार्थ जसे जाम आणि चटनी बनवन्यात केला गेला आहे. हया दोन्ही तयार पदार्थां मधे भरपूर प्रमाणात कैल्सियम, विटामिन-सी आणि बीटा-कैरोटीन उपलब्ध आहेत. लोकांनी हया दोन्ही पदार्थांना रुचकर आणि पौष्टिक अशी उपमा दिली आहे म्हणून हया पदार्थांचा वापर करण्यात काहीच हरकत नाहीं कारण आपल्याला पौष्टिक आणि औषधीय असे दोन्ही गुण मिळतात. हया झाडाचा पानांचा आणि फुलांचा उपयोग निरोगी राहन्यासाठी महिन्यातुन एकदा तरी करायला हवा. आपण आपल्या आहारात ह्याचा समावेश करून बरयाच रोगापासून आपले आरोग्य सांभाळू शकतो. बरेच लोक हया झाडाचे पौष्टिक आणि औषधि गूण जानत नसतील. अगस्त्य्या पाना-फुलापासून निर्मित खाद्य पदार्थ सध्या तरी बाजारात उपलब्ध नाहीत. हया प्रजातिचा विस्तार सामाजिक वनीकरणचा माध्यमातून केला गेला पाहिजे जेणेकरून लोकांमधे जेव्हा हया प्रजाति बद्दल माहिती पोह्चेल तेव्हा नक्कीच हया बद्दल जागरूकता आणि वापर वाढ़ेल.

Know your Biodiversity

Swaran Lata

Tropical Forest Research Institute, Jabalpur

Bubulcus ibis

Bubulcus ibis, commonly known as Eastern Cattle Egret or Cattle Egret, belongs to family Ardeidae. The name *Bubulcus* is derived from Latin meaning herdsman and its common name is because of its association with cattle. The cattle egret was first described in 1758 by Linnaeus as *Ardea ibis* because of superficial similarities in appearence but moved to its current genus by Charles Lucien Bonaparte in 1855. It is a cosmopolitan bird found in the warm temperate zone, tropics and the subtropics. It originated in Africa from where it apparently dispersed naturally to other parts of the world including India.

Cattle Egret is a monogamous species. It is a white bird with yellow bill, short dull orange legs, thick neck, hunched posture and adorns buff plumes during breeding season. Cattle Egret usually starts breeding when it is 2 - 3 years old. The nests are usually built on trees, shrubs or bushes, swamp or mangrove. A female usually lays 3 - 4 eggs which are pale blue in colour. Insects such as flies, grasshoppers, spiders, crickets, moths, beetles and larger prey such as frogs, fishes, crayfish, small snakes, nestling birds and eggs are the most favoured food of Cattle Egret. Grasslands, pastures, farmlands, wetlands and rice paddies are feeding habitats. The massive and rapid expansion of the Cattle Egret's range is due to its relationship with humans and their domesticated animals. They usually follow grazing animals or moving vehicles such as tractors in order to take advantage of the "beating effect" where prey are disturbed and flushed out of their habitats making it easier for the cattle egret to capture them. Cattle egrets are often found with elephants, cattle and other herbivores hence these egrets also indicate the presence of associated species.

It does not have any impact on native heron species because of its different diet and breeding season. Main threat of this species is on islands of Hawaii where they feed on eggs of endangered wetland birds and compete with insect eating species like frogs, toads and skinks. Furthermore, they damage aquaculture habitats by eating prawns and also cause hazards at local airports. The cattle egret is diurnal. They are migratory birds and have a tendency to disperse long distances. They tend to settle in large colonies often with other species of birds and they also migrate with other similar birds. Cattle egrets now became exotic in some parts of the world because of migratory and dispersing nature. Due to its wide distribution, the species is evaluated as least concern by IUCN.

Celastrus paniculatus

Celastrus paniculatus is a medicinal plant which has been used for thousands of years in the traditional Ayurvedic system of medicine. It is a woody deciduous climbing shrub, commonly known as Black oil tree, Intellect tree, Climbing staff plant and Bitter sweet. In Sanskrit it is known as Malkanguni/Jyotishmati. It belongs to family Celastraceae and *Celastrus dependens* is its synonym. It is native to the Indian continent, but is known to grow widely in Australia, China, Taiwan, Cambodia, Indonesia, Laos, Malaysia, Myanmar, Nepal, Sri-Lanka. It is a rare and endangered medicinal plant distributed throughout India mostly in tropical forests and subtropical Himalayas.

The stem is rough, pale or reddish brown, exfoliating bark covered densely with small elongated white lenticels. The inner bark is light and cork like with yellow sapwood. The leaves are simple, broad, and oval, obovate or elliptic in shape, leathery and smooth, alternately arranged on short petioles. Capsules of the plant are depressed, globose, tri-lobed, bright yellow colored with 3-6 seeds per capsule which are enclosed by an orange-red aril.

Seeds, bark and leaves are the economicaly important parts of plant. The seeds contain the alkaloids celastrine and paniculatin, which give the herb its therapeutic properties. This plant possesses a strong antioxidant as well as free radical scavenging activity. *Celastrus paniculatus* has also been exploited for its potential role in the management of neurodegenerative diseases and other neuronal disorders such as Alzheimer's disease. Oil being a powerful stimulant for neuromuscular system is also used for the treatment of rheumatism, gout and paralysis. It is also used as memory booster, anti-depressant, rejuvenator. In Unani system of medicine seeds are used as brain and liver tonic, to cure joint pains, leucoderma, cough, asthma, leprosy and weakness.

Wild populations of the *Celastrus paniculatus* in India are at high risk. This species is vulnerable in Western Ghats, rare in Odisha and critically endangered in Uttar Pradesh, Madhya Pradesh and Uttrakhand. Over exploitation, poor germination and increasing demand by pharmaceutical industry has resulted in decline in its wild population. To protect and fulfil the increasing demand of this plant there is need to develop propagation protocols, conservation strategies and commercial cultivation.

सुन्दर पीले फूल मेरे, अमलतास है नाम ।

लम्बे काले गेल फल, आते दवाई के काम ।